International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(6): 131-133

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(6): 131-133
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 28-09-2016
Accepted: 29-10-2016

डॉ. आयुष गुप्ता
सहायक प्राध्यापक इन्द्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय

Correspondence
डॉ. आयुष गुप्ता
सहायक प्राध्यापक इन्द्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय

आयुर्वेदः आधुनिक आयुर्विज्ञान का आधार

डॉ. आयुष गुप्ता

सारांश
प्राचीन चिकित्सा पद्धति का महत्व तब स्पष्टतया परिलक्षित होता है, जब आधुनिक आयुर्विज्ञान की औषधियाँ अपने अतिरिक्त प्रभाव (Side effects) तथा रोगों के मूल को नष्ट करने में यदा–कदा असफल हो जाती है। वास्वत में प्राचीन चिकित्सा पद्धति रोग के मूल को पहचान कर उसका निदान प्रारम्भ करती है। आयुर्वेद, आधुनिक आयुर्विज्ञान की तरह तन्त्रिका–तन्त्र (Nervous System) पर प्रभाव डालकर रोग का अल्पकालीन समाधान नहीं करता। आधुनिक आयुर्विज्ञान पद्धति सभी प्रकार के शारीरिक तापवृद्धि अथवा दर्द के लिए पैरासीटामोल (Paracetamole) जैसी औषधियों का प्रयोग करती है, जो कि वास्तविक समस्या पर प्रभाव न डालकर तन्त्रिका तन्त्र के उस भाग पर प्रभाव डालती है, जिनसे तह अंग नियन्त्रित होता है। यह औषधि तत्काल दर्द निवारक सिद्ध होती है किन्तु वास्तविक या मौलिक समस्या का समाधान न होकर किडनी तथा आमाशय (lever) पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
आयुर्विज्ञान की सभी औषधियाँ अम्ल (Acid), क्षार (Base) तथा लवण (Salt) पर आधारित होती है। इन सभी का आधार प्रकृति (Nature) ही है। यथा यदि किसी औषधि में एल्कोहल (C_2H_5OH, C_3H_7OH आदि) है तो इसका निर्माण प्रकृति में प्राप्त होने वाले पेड़–पौधों/फलों आदि के रस (Juice) के किण्वन (Fermentation) द्वारा ही होता है। सभी रासायनिक अम्ल, क्षार तथा लवण मूल प्रकृति से ही प्राप्त होते हैं जैसे CH_4 (मीथेन), धान के खेत में अधिकता से प्राप्त होती है। आयुर्वेद के समय औद्योगिकीकरण का अभाव या, अतः इन प्राकृतिक तत्वों का सीधा उपयोग औषधि के रूप में किया जाता था। रोगशमन का एक सीधा सिद्धान्त आयुर्वेद तथा आयुर्विज्ञान दोनों में प्रचलित है अम्ल की अधिकता यदि शरीर में है तो क्षारीय औषधि, एवं ठीक इसका व्युत्क्रम। आयुर्वेद में वात, पित्त एवं कफ का असन्तुलन रोग का कारण है। वात, पित्त, कफ सामान्य तौर पर अन्य कुछ न होकर पदार्थ की तीन अवस्थाएं ठोस, द्रव तथा गैस ही हैं।
इस प्रकार प्राचीन आयुर्वेद, को रोगनिदान की प्रक्रिया रोग परीक्षण (Diagnosis) की विधियों एवं आधुनिक औषधियों की प्रकृतिमूलकता के कारण आयुर्विज्ञान का आधार सिद्ध किया गया है। इसके साथ–साथ आयुर्विज्ञान की अतिरिक्त प्रभावकता (Side effects) एवं तन्त्रिका तन्त्र पर नकारात्मक प्रभावों जैसी सीमाओं को स्पष्ट करते हुए आयुर्वेद का महत्त्व स्पष्ट किया गया है।

कूट शब्दः आयुर्वेदः आधुनिक आयुर्विज्ञान, औषधियाँ, शारीरिक तापवृद्धि

प्रस्तावना
भारतीय साहित्य ज्ञान का विपुल भण्डार है। आधुनिक एवं अद्यतनीय ज्ञान के मूल को यदि खोजा जाये, तो भारतीय साहित्य ही वह अन्तिम आधार होगा जिस पर आधुनिक प्रसाद निर्मित है। इसी परम्परा में आयुर्विज्ञान का मूल भी चरक कृत चरक संहिता में प्राप्त होता है। यद्यपि अथर्ववेद एवं वैदिक साहित्य भी आयुर्वेद के अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं, किन्तु क्रमबद्ध रूप से विशुद्ध आयुर्वेद की कोटि में चरक संहिता का विशिष्ट स्थान है। न केवल चिकित्सा प्रक्रिया अपितु रोग के प्रकार, कारण, शमन के उपायों के साथ–साथ चिकित्सक के लिये नीतिशास्त्र (आचारशास्त्र) का भी इस ग्रन्थ में वर्णन किया गया है। चिकित्सक के ज्ञान, व्यवहार, प्रयोग आदि की भी विस्तृत चर्चा चरक ने अपने ग्रन्थ में विशेष रूप से की है। अतः सार रूप में यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि चरक संहिता न केवल रोगशमन का साधक ग्रन्थ है, अपितु चिकित्सक की आचारसंहिता भी है।
आयुर्विज्ञान के अनेक भेद–प्रभेद हैं। इनमें औषधि–विज्ञान एक विशेष शाखा है। औषधि (Medicine) द्वारा रोग का शमन इस का साध्य है, जबकि औषधि साधन है। प्राचीन तथा आधुनिक आयुर्विज्ञान के सिद्धान्तों का यदि विवेचन किया जाये तो मुख्यतः औषधि विज्ञान (Medical Science) तथा शल्य चिकित्सा (Surgery) ही इसके मुख्य भेद हैं। इन दोनों भेदों में से प्रथम 'औषधि विज्ञान' के विवेचन द्वारा इस पत्र के माध्यम से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि चरक संहिता, आधुनिक आयुर्विज्ञान का आधार है। तर्कों द्वारा एक व्यापक अवधारणा की सिद्धि कि 'प्रकृति ही समस्त जड़ पदार्थों का मूल है।' भी इस शोधपत्र का व्यापक प्रयोजन है। अतः इन दोनों उद्देश्यों की सिद्धि के लिये आधुनिक औषधि विज्ञान एवं प्राचीन औषधि विज्ञान के व्यापक स्वरूप पर दृष्टिपात करना आवश्यक होगा।

प्राचीन औषधि विज्ञानः चरक संहिताः महर्षि चरक ने प्राचीन औषधि विज्ञान के अन्तर्गत प्रत्येक उस प्राकृतिक संसाधन का उपयोग किया है, जो किसी न किसी रूप में रोग से शान्ति प्रदान करता है। पूरे ग्रन्थ में लगभग सहस्त्र जड़ी बूटियों, वनस्पतियों, फल, फूल, तना, सामुद्रिक जल, नदी के जल, विभिन्न प्रकार के लवण, विभिन्न पशुओं के मूत्र, आदि को औषधि के रूप में प्रयोग किया है। इतना विस्तृत ग्रन्थ इतने यशस्वी आचार्य ने बिना किसी प्रयोग या तर्क के नहीं लिखा होगा। ग्रन्थ के लेखन का आधार भी तर्कपूर्ण एवं विस्तृत रहा होगा। चरक के औषधि चयन का आधार त्रिदोष तथा उनकी प्रकृति है। वात, पित्त तथा कफ ये तीन रोग के मुख्य आधार हैं। शरीर में इनके विकार एवं मात्राधिक्य ही रोगों के आधार हैं। इनका संघटन शरीर को किस प्रकार प्रभावित करता है, इसका ज्ञान वात, पित्त तथा कफ के मूलभूत तत्व ही निर्धारित करते हैं। महर्षि चरक ने चरक संहिता में इन तीनों कारकों के प्रकोप के प्रभाव एवं शमन के उपायों का विस्तृत विवेचन कि या है।

(अ) वातः चरक संहिता में पूर्वपक्षी द्वारा वात के सम्बन्ध में कई प्रश्न किये गये हैं। यथा वात (वायु) के गुण क्या हैं? इसके कुपित होने के क्या कारण हैं?, कुपित वायु को शान्त करने के प्रकार/उपाय आदि।[1] इन प्रश्नों के उत्तर में वात का स्वरूप पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है। वायु के गुणों के विषय में बताया गया है कि वायु (1) रूक्ष (2) लघु (3) शीत (4) दारूण (5) खर (6) विशद गुणों से युक्त है।[2]

(ब) पित्तः चरक ने मरीचि के कथन को उद्घृत करते हुये पित्त का शरीर पर प्रभाव बताया है। इस विषय में प्राकृत तथा विकृत पित्त के कर्म का विवेचन किया है। मरीचि के अनुसार शरीर में पित्त के अन्तर्गत रहने वाली अग्नि की कुपित तथा अकुपित होकर शरीर में शुभ व अशुभ कार्यों को करने वाली होती है, जैसे अन्न का पचना, न पचना, नेत्रों से देखना, न देखना शरीर में तापक्रम का ठीक रहना, न रहना ये सभी कार्य पित्त के अन्तर्गत रहने वाली अग्नि ही सम्पादित करती है।[3]

(स) कफः काप्य नामक वैद्य के अनुसार कफ के अन्तर्गत रहने वाला सोम ही कुपित और अकुपित रहकर शरीर में शुभाशुभ कार्यों का सम्पादन करता है। जैसे शरीर में दृढ़ता, शिथिलता, शरीर का उपचय (मोटापन) और कार्श्य (दुबलापन), उत्साह और आलस्य वृषता तथा नपुंसकता, विषयों का ज्ञान व अज्ञान, मोह और अन्य द्वन्द्व आदि को उत्पन्न करता है।[4]

अतः उपरोक्त वात, पित्त, कफ की कुपित एवं अकुपित अवस्था ही रोग अथवा निरोग का निर्धारण करती है। सामान्य रूप से यदि इन त्रिदोषों की प्रकृति को समझा जाये तो बात–गैसरूप, पित्त–द्रवरूप तथा कफ ठोसरूप है। भौतिक विज्ञान भी पदार्थ की इन्हीं तीन अवस्थाओं को स्वीकार करता है। इस प्रकार शरीर की संरचना एवं आधार का मुख्य तत्व एक ही है। जो विविध अवस्थाओं में विविध रूप लेकर नाना प्रकार से शारीरिक क्रियाओं में योगदान देता है। जैसे जल एक ही है, सामान्य ताप (सूर्य संयोग) से वह द्रव, अधिक ताप (तेज संयोग) से वह गैस तथा न्यूनतम ताप पर वह ठोस (वर्फ) रूप में होता है। जबकि मूल तत्व जल ही है। उसी प्रकार प्रकृति की विकृति यह शरीर भी मूलतः एक तत्व से निर्मित है, जिसके घटक है पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश। (यह पत्र की व्यापक अवधारणा के लक्ष्य की सिद्धि में तर्क है।)

आधुनिक औषधि विज्ञानः आधुनिक औषधि विज्ञान निश्चित रूप से तकनीक एवं प्रौद्योगिकी की दृष्टि से उन्नत है। औषधियों के निर्माण का आधार लवण (Salt) तथा क्षार (Base) आदि हैं। लवण तथा क्षार शरीर पर भिन्न–भिन्न मात्रा के संयोग से भिन्न–भिन्न प्रभाव डालकर शारीरिक पदार्थों को संतुलित (न्यून/उच्च) करते हैं। बाजार में अनेक प्रकार की औषधियाँ उपलब्ध हैं, किन्तु उनका मूल लवण (Salt) तथा क्षार (Base) है। वह लवण तथा क्षार भी मूलतः प्रकृति से ही प्राप्त होता है। इस स्थल पर यह ध्यातव्य है कि विभिन्न औषधियों के मूल में भी प्रकृति है।

आधुनिक तकनीक ने आधुनिक चिकित्सा एवं औषधि शास्त्र को विशेषीकृत तथा उन्नत दोनों बनाया है। आज किसी रोग की सम्भावना हेतु रक्त परीक्षण (Blood Test) एक्स रे (X-Rays), मूत्र परीक्षण (Unine Test) जैसे अनेक परीक्षण चिकित्सक द्वारा किये जाते हैं। इन परीक्षणों के माध्यम से चिकित्सक (Doctors) रोग का पता लगाते हैं। किन्तु अधिकांश आधुनिक दवाएं रोग की जड़ में न जाकर, सीधे तन्त्रिका तन्त्र पर प्रभाव डालती हैं। यथा हाँथ के दर्द, पैर के दर्द सभी तरह के दर्द का निवारण पैरासीटामोल (Paracitamole) नामक औषधि द्वरा हो जाता है। किन्तु यहाँ यह ध्यातव्य है कि Paracetamol वास्तविक समस्या पर प्रभाव न डालकर तन्त्रिका तन्त्र के उस भाग पर प्रभाव डालते हैं, जिससे शरीर का वह अंग नियन्त्रित होता है यह दवा तत्काल दर्द निवारक सिद्ध होती है, किन्तु वास्तविक समस्या का समाधान इससे नहीं हो सकता तथा अन्ततः वह रोग वृद्धि को प्राप्त होता है। आधुनिक युग में किडनी तथा आमाशय के रोग इन्हीं औषधियों के कारण बढ़ते हैं।

आधुनिक तथा प्राचीन औषधि विज्ञान में तुलनाः आधुनिक चिकित्सा पद्धति Diagnosis (रोग–परीक्षण) के बड़े–बड़े यन्त्रों के कारण अत्यन्त विश्वसनीय एवं चर्चित है। वास्तव में विज्ञान की प्रगति इसमें कारण है तथा अल्पसमय में रोग को जान लेना इसकी विशिष्टता है। प्राचीन काल में भी उस समय के अनुसार रोगपरीक्षण की कई प्रविधियाँ बतायी गयी हैं। जैसे अष्टाङ्गः संग्रह में रोगी की परीक्षा दर्शन, स्पर्श तथा रोगी के व्यवहार सम्बन्धी प्रश्नों को पूछकर की जाती थी।[5] रोगी के शरीर का वर्ण पीत, शुक्ल आदि देखकर; स्पर्श अर्थात् नाड़ी की गति एवं शरीर का तापमान देखकर तथा रोगी या उसके सम्बन्धियों से प्रश्न पूछकर रोग परीक्षण का विधान किया गया है। योगरत्नाकर में आठ प्रकार से रोगी की परीक्षा (Diagnosis) का उल्लेख किया है जो क्रमशः नाड़ी, मूत्र, मल, जिह्वा, शब्द, स्पर्श दृष्टि (आँख) तथा आकृति हैं।[6] ये आठ प्रकार अनेक प्रकार के रोगों का पता लगाने में सहायक है। यथा नाड़ी के द्वारा ह्रदय गति एवं रक्तचाप का अनुमान मूत्र परीक्षण द्वारा शरीर से निष्कासित पदार्थों की अल्पता अथवा अधिकता का परीक्षण, शब्द द्वारा कण्ठ एवं स्वरतन्त्र से जुड़े रोगों की पहचान तथा इसी प्रकार दृष्टि तथा आकृति से नेत्र तथा त्वचा आदि सम्बन्धी रोगों की पहचान सरल हो जाती है।

आयुर्वेद में रोग के दो स्थान बताये गये हैं काय (शरीर) तथा मन[7]। शरीर एवं मन को पीड़ा देने वाले भाव को रोग कहते है– रूजाकरत्वाद् रोगः। इसी प्रकार आधुनिक चिकित्सा पद्धति में भी शरीर रोग तथा मनोरोग के लिए भिन्न–भिन्न प्रविधियाँ एवं उपचार प्रयोग में लाये जाते हैं। आयुर्वेद में निवासस्थान, वातावरण तथा जलवायु के आधार पर देशों की भिन्नता की दृष्टि से चिकित्सा पद्धति की भिन्नता स्पष्ट परिलक्षित होती है। तीन प्रकार के देशों का कथन अष्टाङ्ग संग्रह में किया गया है, जान्गल देश, आनूप देश तथा साधारण देश। इस आधार पर देशों में पायी जाने वाली औषधियाँ, पशु, पक्षी तथा मनुष्य वात प्रधान आनूपदेश के कफ प्रधान होते हैं।[8] किन्तु आधुनिक चिकित्सा पद्धति में इस प्रकार के भेद का भारतीय जलवायु अथवा वातावरण का कोई महत्व नहीं दिखता। भारत में आये हुये विदेशी चिकित्सकों का बिना किसी पर्यावरण प्रभाव सम्बन्धी परीक्षण किये स्वागत किया जाता है, जबकि अन्य देशों में भारत से जाने वाले M.B.B.S, M.D. किये हुये चिकित्सकों को एक और परीक्षा उत्तीर्ण करनी होती है जिसमें चिकित्सकीय ज्ञान के अतिरिक्त उस देश के स्थानीय वातावरण एवं जलवायु से सम्बन्धित शारीरिक प्रभावों पर भी प्रश्न पूछे जाते हैं अतः भले ही भारत में न सही किन्तु विश्व के अनेक देशों ने वातावरण एवं जलवायु के प्रभावों को रोग के कारण तथा निदान पद्धति में एक कारक के रूप में महत्व दिया है–

आयुर्विज्ञान की सभी औषधियाँ अम्ल (Acid), क्षार (Base) तथा लवण (Salt) पर आधारित होती हैं। इन सभी का आधार प्रकृति (Nature) ही है यथा यदि किसी औषधि में एल्कोहल (C_2H_5OH, C_3H_7OH आदि) है तो इसका निर्माण प्रकृति में प्राप्त होने वाले पेड़–पौधों/फलों आदि के रस (Juice) के किण्वन (Fermentation) द्वारा ही होता है। सभी रासायनिक अम्ल, क्षार तथा लवण मूल प्रकृति से ही प्राप्त होते हैं जैसे CH_4 (मीथेन), धान के खेत में अधिकता से प्राप्त होती है। आयुर्वेद के समय औद्योगिकीकरण का अभाव या, अतः इन प्राकृतिक तत्वों का सीधा उपयोग औषधि के रूप में किया जाता था।

पक्षाघात (Paralysis) जैसे घातक रोग की पहचान करने के बाद आधुनिक चिकित्सक औषधि–विज्ञान की दृष्टि से रक्त को तरलतर (Diluter) बनाने की औषधियाँ देते हैं। पक्षाधात का मुख्य कारण तन्त्रिका में रक्त का थक्का बन जाना (Blood Cloting), इसके निवारण के लिए रक्त को तरल/पतला करना आवश्यक होता है, अतः चिकित्सक द्वारा ऐसी औषधियाँ दी जाती है, जो रक्त के ताप को कुछ बढ़ाकर रक्त को तरल बनाती है। अब पक्षघात का आयुर्वेदिक विश्लेषण करने पर यह कहा जा सकता है कि रक्त में कफ प्रवृत्ति के असन्तुलन के कारण रक्त का थक्का (Blood Clot) बन गया है, तथा इस असन्तुलन को दूर करने के लिए ऐसी औषधियों/रस/भस्म का प्रयोग करना उचित होगा जिनमें पित्त प्रवृत्ति (अग्नि तत्व) विद्यमान है। ये पित्त प्रवृत्तिकी औषधियाँ भी वही कार्य करती हैं, जो आधुनिक औषधियाँ करती हैं। विज्ञान की प्रगति ने समय लाघव एवं द्रुतनिवारण रूपी वरदान तो दिया है, किन्तु यह कहना कि आयुर्वेद में घातक रोगों का निदान नहीं है, आयुर्वेद के साथ पक्षपात होगा। यहाँ यह ध्यातव्य है कि वैश्वीकरण के दौर में उत्पन्न नवीन रोगों को आयुर्वेद में खोजना, और उनके निवारण की विधि आयुर्वेदिक ग्रन्थों में न मिलने पर आयुर्वेद की महत्ता को कम आँकना उचित नहीं हैं। हमने आयुर्वेद को जितना महत्व दिया है, आयुर्वेद भी हमें उतनी ही सेवायें देगा, यदि आयुर्वेद पर भी शोधकार्य करके इसे अद्यतनीय (Updated) किया जाता तो आज कदाचित आयुर्वेद में भी स्वाईन फ्लू जैसे रोगों का निदान सम्भव होता। यद्यपि आधुनिक चिकित्सा पद्धति इस दृष्टि से अग्रसर है किन्तु रोग को जड़ से समाप्त करने जैसे उपायों की दृष्टि से तथा अन्य प्रभाव (Side-effect) राहित्य के कारण आयुर्वेद अनन्यतम प्रतीत होता है।

संदर्भ सूची

1. किंगुणो वायुः किमस्य प्रकोपणम्, उपशमनानि वाऽस्य कानि.....। चरक संहिता
2. रूक्षलघुशीतदारूणखरविशदाः षडिमे वातगुणा भवन्ति। चरक संहिता
3. मरीचिरूवाच – अग्निरेव शरीरे पित्तान्तर्गतः कुपिताकुपितः शुभाशुभानि करोति। तद्यथा पक्तिमपक्तिं दर्शनमदर्शनम् मात्रामात्रत्वमूष्मणः प्रकृतिविकृतिवर्णौ शौर्यं भयं कोधं हर्ष.....। चरक संहिता
4. सोम एव शरीरे श्लेष्मान्तर्गतः कुपिताकुपितः शुभाशुभानि करोति तद्यथा दाढ्र्यं शैथिल्यमुपचयं कार्श्यमुत्साहमालस्यं वृषतां चापराणि द्वन्द्वानीति। चरक संहिता
5. दर्शनस्पर्शप्रश्नैः परीक्षेत च रोगिणम्। अष्टाङ्ग संग्रह
6. रोगाक्रान्तशरीरस्य स्थानान्यष्टौ परीक्षयेत्। नाडी मूत्रं मलं जिह्वा शब्दं स्पर्शं दृगाकृतिः।। योगरत्नाकर
7. तेषां कायमनोभेदादधिष्ठानमपिद्विधा। अष्टाङ्ग संग्रहं प्रथमोऽध्यायः 44
8. जाङ्गलं वातभूयिष्ठमानूपं तु कफोल्वणम।। अष्टाङ्ग संग्रह–46